Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 9, Issue 2 | November 2021 - April 2022 | pp. 92-96

प्रारम्भ से छठी शताब्दी ई. के मध्य में प्राचीन राजस्थान की मृद्भाण्ड कला का अध्ययन

जयप्रकाश कुमावत

शोधार्थी, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

शोध सारांश

प्रारम्भ में मृद्भाण्डों के महत्त्व को समझा नहीं जाता था तथा उत्खनन के दौरान इनको किसी काम का न समझकर फेंक दिया जाता था। सर्वप्रथम फ्लिंडर्स पेट्री नामक पुरातत्ववेत्ता ने मिश्र में उत्खनन के दौरान प्राप्त मृद्भाण्डों का आकलन किया व बताया कि प्रत्येक युग में विशेष प्रकार के मृद्भाण्ड बनाये जाते हैं। उनका प्रकार बहुत लंबे समय तक बना रहता है जिनका अध्ययन करके हम काल विशेष की संस्कृति का पता लगा सकते हैं। फ्लिंडर्स पेट्री के निष्कर्ष के बाद पुराविदों ने मृद्भाण्डों के महत्त्व को समझा तथा इन्हें पुरातत्व की वर्णमाला के रूप में मान्यता प्रदान की गई। बी.बी.लाल का मानना है कि—''चूंकि मृद्भाण्ड क्षण भंगुर होते है अतएव अपने निर्माण के कुछ वर्षों के अनन्तर प्रयोग में नहीं आते जबकि सिक्के प्रवर्तक शासक या शासिका के शासन काल के 200 वर्षों बाद भी घरों में संगृहीत रहते हैं अत: मुद्राओं की अपेक्षा मृद्भाण्डों द्वारा किसी भी जानकारी को सुनिश्चित तिथिक आधार प्रदान किया जाना सुगम हो जाता है। अत: इनसे इनकी निकट की तिथियों का ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि इनका प्रयोग उनके निर्माण काल के आस-पास ही होता है।

संकेताक्षर— *मृद्भाण्ड, उत्खनन, कालक्रम, सभ्यता, चित्रकारी, उत्तरी काले पॉलिशदार मृद्भाण्ड*

प्रस्तावना

यह जानने की इच्छा किसकी नहीं होती कि हमारे पूर्वज किस प्रकार के बर्तन में अपना धान्य एकत्रित करते थे किन में वे भोजन बनाते थे कि किन में वे खाते व पीते थे। भिन्न स्तरों से प्राप्त ये बर्तनों के टुकड़े अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग ढंग के हैं, इनको बनाने, पकाने, सुखाने, चित्रकारी करने में भी सभी जगह अलग-अलग तरीके है।[1] प्राचीन राजस्थान में मनुष्य अत्यन्त प्राचीन काल से ही मृद्भाण्डों का प्रयोग करता आ रहा है। पहले वह केवल हाथ से बर्तन बनाता था तथा उन पर हल्की चित्रकारी करता था परन्तु बाद में मनुष्य चाक पर इन मृद्भाण्डों को बनाने लगा तथा इन पर काले सफेद रंगों से चित्रकारी करने लगा। इन मृद्भाण्डों में अनाज रखने के बड़े घड़े, पानी के घड़े, सुराही, मर्तबान, कटोरे, प्याले, तश्तरियाँ, कुल्हड़, थालियाँ, ढ़क्कन आदि प्रमुख है। ये मृद्भाण्ड खण्डित अवस्था में पाये गये हैं तथा कुछ मृद्भाण्डों के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। इन मृद्भाण्डों एवं इनके टुकड़ों को ही मृद्पात्र कहा जाता है। मृद्भाण्डों को मृद्पात्र एवं मृण्पात्र के नाम से भी जाना जाता है।

विभिन्न उत्खननों से प्राप्त मृद्भाण्डों के कालक्रम का निर्धारण करने के लिए उष्मा-दीप्ति पद्धति का प्रयोग किया जाता है। सन् 1960 ई. में जी.सी. केनेडी और एल.नॉफ नामक वैज्ञानिकों ने मृद्भाण्डों का कालक्रम ज्ञात करने की उष्मा दीप्ति पद्धति की ओर पुराविदों का ध्यान आकर्षित किया।[2]

दक्षिण भारत की वृहत्पाषाणिक संस्कृति में अन्त्येष्टि कलश समाधियों में मिट्टी के बड़े मृद्भाण्डों का उपयोग किया जाता था। इनका प्रयोग मुख्यत: बच्चों को दफनाने के लिए किया जाता था। मृद्भाण्डों पर मछली का अंकन सर्वाधिक मिलता है। इसके अलावा भी अन्य चित्रकारी में विभिन्न प्रकार के पक्षियों, आड़ी-तिरछी लाइनें, मृद्भाण्डों की ग्रीवा पर लाइनें आदि महत्त्वपूर्ण है।

शोध प्रविधि

अध्ययन का क्षेत्र संपूर्ण राजस्थान से सम्बन्धित है। सम्पूर्ण अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों, राजस्थान के प्रमुख पुरातात्विक संग्रहालयों, शोध निबंधों, इण्डियन आर्कियोलाजिकल रिव्यूज, पुस्तकें, पत्रिकाएँ, साहित्यिक स्रोतों पर आधारित है।

महत्त्व

मृद्भाण्डों से प्राचीन काल के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। चर्म, कास्ट आदि की सामग्रियाँ तो मिट्टी में दबे होने से नष्ट हो जाती है परन्तु मृद्भाण्ड सहस्त्र वर्षों तक मिट्टी में दबे रहने के बाद भी नष्ट नहीं होते हैं। मृद्भाण्डों के निर्माण की शैली विशेष का प्रचलन काल विशेष के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है तथा इनके बनाने के माध्यम से उनकी विकास की स्थिति का पता चलता है। जहाँ उत्खननकर्त्ता अन्य सामग्रियों की उपलब्धि के द्वारा तिथि निर्धारण में असफल रहता है वहाँ मृद्भाण्ड इस उलझी हुई गुत्थी को सुलझाने में सहायक होता है। ''यदि एक ही काल में कई सभ्यताएँ एक साथ विकसित हुई हैं तो उनका ज्ञान एक ही स्तर पर प्राप्त विभिन्न प्रकार तथा रंगों के मृद्भाण्डों के साथ-साथ मिलने से किया जा सकता है। सम्बन्धित सभ्यता का सांस्कृतिक, आर्थिक व धार्मिक सम्बन्ध किन-किन सभ्यताओं से हैं, का निर्धारण विविध स्थानों से प्राप्त मृद्भाण्डों से होता है।''

मृद्भाण्डों के प्रकार

पुराविदों ने मृद्भाण्डों को निर्माण, विधि, पॉलिश और अलंकरण के आधार पर निम्न वर्गों में विभाजित किया है—

1. गैरिक मृद्भाण्ड (Ochre Coloured Pottery) OCP—गैरिक मृद्भाण्डों की खोज सर्वप्रथम बी.बी.लाल ने 1949 ई. में बिसौली (बदायूं) तथा राजपुरपरसु (बिजनौर) के पुरास्थलों के उत्खनन के दौरान की। इस रंग के मृद्भाण्डों को जब हाथ लगाते है तो हाथ में गेरूरंग छूटकर लगने लगता है। राजस्थान में गैरिक मृद्भाण्ड निचले स्तर से प्राप्त हुए है। ऐसा लगता है कि या तो ये कम पके हुए हैं या काफी पुराने हैं।[3] राजस्थान में ये खुर्दी (नागौर), कुल्हाड़े का जोहड़ (सीकर), गणेश्वर (सीकर), नोह (भरतपुर), राजनौता (जयपुर), जोधपुरा (जयपुर) के उत्खनन में देखने को मिलते हैं। बी.बी.लाल के अनुसार इन मृद्भाण्डों का कालक्रम 1200 ई. पू. निर्धारित किया गया है।

2. चित्रित धूसर मृद्भाण्ड (Painted Grey Ware) PGW—इन मृदभाण्डों को ही आर्यों का प्रतिनिधि माना जाता है। इनकी खोज सर्वप्रथम बी.बी. लाल ने 1940-44 ई. में अहिच्छत्र से की। ये मृद्भाण्ड लौहयुगीन मृद्भाण्ड कहलाते है। इस पात्र परम्परा का कालक्रम 1100-800 ई.पू. निर्धारित की जा सकती है। महाभारत युगीन स्थलों की पहचान चित्रित धूसर मृद्भाण्डों से ही होती है। बीजवा (अलवर) सुनारी (झुंझुनूं), अबर (भरतपुर), चक-86, नोह (भरतपुर), विराट नगर (जयपुर) से ये मृद्भाण्ड मिले है।[4]

3. कृष्ण लौहित मृद्भाण्ड (Black and Red Ware) BRW—ये प्रागैतिहासिक काल के प्रमुख मृद्भाण्ड है। डी.पी. अग्रवाल ने इनका कालक्रम ई.पू. 2200-600 निर्धारित किया है। कृष्ण लौहित मृद्भाण्ड संस्कृति का विस्तार प्रमुख रूप से मध्य भारत और गंगा घाटी में हुआ। इनके निर्माण की तकनीक इजिप्शियन तकनीक कहलाती है। धोण्डर खेड़ा (धोलपुर), जोधपुरा (जयपुर), नोह (भरतपुर), विराटनगर (जयपुर) से ये मृद्भाण्ड मिले है।[5]

4. उत्तरी काले पॉलिशदार मृद्भाण्ड (Nothern Black Polished Ware) NBPW—यह मृद्भाण्ड सबसे पहले 1913 में तक्षशिला के भीर के टीले से प्राप्त किये गये। इनका कालक्रम प्रमुख रूप से ई.पू. 6वीं शताब्दी से मौर्यकाल तक माना गया है। विराटनगर (जयपुर), जोधपुरा (जयपुर), नोह (भरतपुर) से इन मृद्भाण्डों की प्राप्ति हुई हैं। इन मृदभाण्डों के साथ ही आहत सिक्कों की सर्वप्रथम प्राप्ति हुई है।[6]

प्राचीन राजस्थान के प्रमुख पुरातात्विक स्थलों से प्राप्त मृद्भाण्ड

राजस्थान में पुरापाषाण काल में मनुष्य को मृद्भाण्ड कला का ज्ञान नहीं था। राजस्थान में मृद्भाण्ड मध्यपाषाण काल एवं नवपाषाण काल से मिलने लगते है।

1. बागौर (भीलवाड़ा)—राजस्थान में मध्यपाषाण काल का प्रमुख पुरास्थल बागौर (भीलवाड़ा) है। यहाँ 1968-70 ई. में वी.एन. मिश्र ने उत्खनन करवाया था। बागौर के द्वितीय चरण के मृद्भाण्डों के अवशेषों का रंग मटमैला है और वे कुछ मोटे व जल्दी टूटने वाले है। ये बर्तन रेखा वाले तो

है परन्तु इनमें अलंकरण का अभाव है। ये मृद्भाण्ड हाथ से बनाये गये है।[7]

2. कालीबंगा (हनुमानगढ)—इसकी खोज 1952 ई. में अमलानंद घोष ने की। इसका विस्तृत उत्खनन बी.बी. लाल व बी.के. थापर ने 1961 ई. में किया। कालीबंगा सभ्यता का कालक्रम कार्बन डेटिंग पद्धति के अनुसार 2350 ई.पू. से 1750 ई.पू. माना जाता है। कालीबंगा से पूर्व हड़प्पा, हड़प्पाकालीन व उत्तर हड़प्पाकालीन अवशेष प्राप्त होते हैं। कालीबंगा से प्राप्त मृद्भाण्ड चाक-निर्मित है तथा पतली गढ़न वाले है। कालीबंगा के मृद्भाण्ड प्रमुखतया लाल रंग के है तथा इन पर काले व कभी-कभी सफेद रंग से चित्रकारी की गई है। कालीबंगा से मुख्य रूप से लेखयुक्त मृद्भाण्डों की प्राप्ति हुई है। इन मृदभाण्डों में मटकियाँ, भाँड, कटोरे, थालियाँ, हत्थे वाले बर्तन तथा इनके टुकड़े मिले है। इन मृद्भाण्डों पर प्रकृति पर आधारित पेड़, पौधे, पशु, पक्षी आदि का चित्रण है।[8]

3. आहड़ (उदयपुर)—यहाँ ताम्रयुगीन सभ्यता के अवशेष मिलते है। आहड़ की खोज रतनचंद्र अग्रवाल ने की थी। 1961 ई. में दकन कॉलेज एण्ड पोस्ट ग्रेजुएट रिसर्च इंस्टीट्यूट पुणे, राजस्थान के पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग तथा आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में इस पुरास्थल का उत्खनन हुआ। आहड़ सभ्यता का कालक्रम 2100-1500 ई.पू. निर्धारित किया गया है।

आहड़ सभ्यता का नवीनतम उत्खनित स्थल बालाथल भी उदयपुर जिले की बल्लभगढ़ तहसील में स्थित है। 1993 ई. में वी.एन. मिश्र ने इसकी खोज की व दकन कालेज एण्ड पोस्ट ग्रेजुएट इस्टीट्यूट पुणे तथा राजस्थान स्टडीज उदयपुर के संयुक्त तत्वाधान में वी.एन. मिश्र के निर्देशन में ही 1994-1995 में इसका उत्खनन हुआ। आहड़ संस्कृति का ही एक अन्य पुरास्थल जिसका उत्खनन सन् 1957-58 ई. में बी.बी.लाल ने करवाया था वो है गिलूण्ड (राजसमन्द)।[9]

आहड़ की ताम्रपाषाणिक सभ्यता के लोग मुख्य रूप से सफेद रंग से चित्रित कृष्ण-लौहित मृद्भाण्डों का प्रयोग करते थे। मृद्भाण्डों को रेखीय व ज्यामितीय आकृतियों के अलंकरणों से चित्रित किया जाता था। आहड़ संस्कृति के लोग चाक निर्मित मृद्भाण्डों लाल रंग के पतले पात्र, मोटी गढन की चमकीले लाल प्रलेप वाले मृद्भाण्ड ताम्र रंग वाले मृद्भाण्ड आदि का प्रयोग भी करते थे। बालाथल से रिजर्व स्लिप वेयर एवं लाल लेप वाले मृद्भाण्ड मिले हैं। इसके अलावा बालाथल से पतला लाल मृद्भाण्ड, हलका काला मृद्भाण्ड, लाल काला मृद्भाण्ड, हलका पीला मृद्भाण्ड आदि भी मिलते है।[10]

4. गणेश्वर (सीकर)—गणेश्वर को भारत में ताम्रयुगीन सभ्यता की जननी माना जाता है। इसका उत्खनन 1977 ई. में रतनचंद्र अग्रवाल तथा विस्तृत उत्खनन 1978-79 ई. में विजयकुमार द्वारा करवाया गया। गणेश्वर से रिजवर्ड स्लिप मृद्भाण्ड अपनी विशिष्ट पहचान रखते है। इसके अलावा गणेश्वर से मिट्टी के छल्लेदार बर्तन भी प्राप्त हुए है। इस सभ्यता का कालक्रम 2800-2200 ई.पू. निर्धारित किया गया है।

5. जोधपुरा (जयपुर)—1972-73 ई. में आर.सी. अग्रवाल तथा विजयकुमार के निर्देशन में यहाँ पर उत्खनन कार्य किया गया। प्रथम स्तर से कपिषवर्णी मृद्भाण्डों के अवशेष मिले है। दूसरे स्तर से काले व लाल रंग के अचित्रित धरातल वाले मृद्भाण्ड मिले हैं। तृतीय स्तर से स्लेटी रंग के चित्रित मृद्भाण्ड मिले हैं। चतुर्थ स्तर से मौर्यकाल के साधारण लाल रंग के मृद्भाण्ड, पंचम स्तर से शुंग-कुषाण काल के मृद्भाण्ड मिले है।

6. नोह (भरतपुर)—रतनचंद्र अग्रवाल के निर्देशन में 1971-72 ई. में नोह में उत्खनन हुआ। नोह के प्रथम स्तर से छोटे आकार के खण्डित मृद्पात्र, द्वितीय सतर से काले व लाल धरातलीय चिकने चमकदार खंडित मृद्भाण्ड, स्लेटी रंग के चित्रित प्याले व तश्तरियाँ तीसरे स्तर से मिली है।

7. विराटनगर (जयपुर)—यहाँ 1936 ई. में दयाराम साहनी ने उत्खनन करवाया। यहाँ से मौर्यकालीन सभ्यता के प्रतीक उत्तरी काले पॉलिशदार मृद्भाण्डों की प्राप्ति हुई। 1962-63 में नील रत्न बनर्जी व कैलाश नाथ दीक्षित ने यहाँ उत्खनन किया व स्लेटी रंग के चित्रित मृद्भाण्ड प्राप्त किए जो महाभारतकालीन मृद्भाण्ड कला को दर्शाते है।[11]

8. रैड (टोंक)—1938-39 ई. में दयाराम साहनी के नेतृत्व में इसका उत्खनन के.एन. पुरी द्वारा करवाया गया। यहाँ से प्राप्त सभी मृद्भाण्ड चाक पर निर्मित है। इन मृद्भाण्डों पर स्वास्तिक त्रिरत्न, वृषभ आदि की चित्रकारी मिलती है। यहाँ से प्राप्त मृद्भाण्डों पर गोल रिंग वेल्स एक दूसरे पर

लगा दिये जाते थे। कुछ मृद्भाण्ड इतने चिकने और सुदृढ़ दिखाई देते है जिससे अनुमान लगाया जाता है कि उन पर विदेशी प्रभाव हो।[12]

9. सुनारी (झुंझूनूं)—इसका उत्खनन 1980-81 ई. में राजस्थान राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा किया गया। सुनारी से स्लेटी रंग के मृद्भाण्ड, मौर्यकालीन काली पॉलिश वाले मृद्भाण्ड एवं कृष्ण मार्जित मृद्भाण्ड प्राप्त हुए है।

10. रंगमहल (हनुमानगढ़)—रंगमहल का उत्खनन 1952-54 ई. में स्वीडन महिला हन्ना रिड ने करवाया। इसे रंग महल सभ्यता के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ से प्राप्त मृद्भाण्ड गुप्तकालीन मृद्भाण्डों से मिलते-जुलते है। रंगमहल से प्राप्त बर्तनों का रंग लाल है तथा इन पर काले रंग से चित्रण किया गया है। रंगमहल के मृद्भाण्ड चाक पर बनाये गये है तथा इनकी गढन पतली है। यहाँ के प्रमुख मृद्भाण्डों में टोंटीदार घड़े, घण्टाकार मृद्पात्र व एक मिट्टी का कटोरा जो लूण्ड संग्रहालय (स्वीडन) में है आदि प्रमुख है। रंगमहल मृद्भाण्डों पर विभिन्न पशु-पक्षियों की चित्रकारी की गई है।[13]

11. लाछूरा (भीलवाड़ा)—इसका उत्खनन 1998—1999 ई. में बी.आर. मीना द्वारा करवाया गया। यहाँ से प्राप्त प्रमुख मृद्भाण्डों में तीखे किनारे वाले शुंगकालीन प्याले प्राप्त हुए हैं।

12. भीनमाल (जालौर)—1953-54 ई. में रतनचंद्र अग्रवाल ने यहाँ पर उत्खनन करवाया। इसके प्रारम्भिक स्तर से चित्रित-धूसर मृद्भाण्ड तथा द्वितीय स्तर से उत्तरी भारतीय कृष्ण मार्जित मृद्भाण्डों की प्राप्ति हुई है। भीनमाल के मृद्भाण्डों पर रोमन प्रभाव दिखाई देता है। यहाँ से रोमन एम्फोरा सुरापात्र की प्राप्ति हुई है।

13. जूनाखेड़ा (पाली)—इसकी खोज 1883-84 ई. में एच.डब्ल्यू.बी.के गैरिक ने की। 1889-90 से 1995-96 के दौरान चार स्तरों में राज्य के पुरातत्व विभाग द्वारा उत्खनन करवाया गया। प्रथम स्तर से काले व लाल धरातल के अचित्रित मृद्भाण्ड के टुकड़े, द्वितीय स्तर से मृद्भाण्ड के खण्डों पर शालभंजिका का अंकन प्रकाश में आया है। तृतीय स्तर से काले ओपदार कटोरे तथा छोटे आकार के दीपक मिले है।[14]

इसके अलावा चीथवाड़ी, मैढ़, नंदलालपुरा (चाकसू), कोटा माहोली (सवाईमाधोपुर), तिलवाड़ा (बाड़मेर), ओझियाना (भीलवाड़ा), तरखानवाला डेरा (गंगानगर), ईसवाल (उदयपुर), कुराड़ा (नागौर), एकलसिंहा (अजमेर), मलाह (भरतपुर), साबनिया, पूगल (बीकानेर), पिण्डपाडलिया (चितौडगढ़), किराडोत (जयपुर), एलाना (जालौर), नमाना (बूंदी), झाड़ोल (उदयपुर), वरमाण, रेवदर (सिरोही), डडीकर (अलवर), नगर (टोंक), नलियासर (सांभर) आदि पुरास्थलों से भी प्राचीन राजस्थान के प्रमुख मृदभाण्डों की प्राप्ति हुई हैं। 6वीं शताब्दी ई. तक आते-आते इन मृदभाण्डों की बनावट में और अधिक परिवर्तन दिखाई दिया तथा इन पर कई प्रकार की चित्रकारी की जाने लगी। 6वीं शताब्दी ई. में मृद्भाण्ड पहले से अधिक सुन्दर बनने लगे तथा इन्हें अच्छी तरह पकाया जाने लगा।

निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि संपूर्ण राजस्थान में मृद्भाण्डों के नये-नये प्रकार देखने को मिलते है। मृद्भाण्डों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का। यजुर्वेद, अथर्ववेद व शतपथ ब्राह्मण में कुम्हार की कला का उल्लेख मिलता है। बाण ने जिन चार कलाओं का उल्लेख किया है उनमें एक मृतिका कला भी है। अलग-अलग स्तरों से प्राप्त मृद्भाण्ड अलग-अलग ढंग के हैं। इनके बनाने में इनकी मिट्टी में इन्हें सुखाने में, इनकी रंगाई में, इन्हें पकाने में इनकी चित्रकारी आदि में जो उत्तरोत्तर विकास और परिवर्तन दिखाई पड़ता है उसमें मनुष्य का अतीत छिपा हुआ है। राजस्थान के विभिन्न संग्रहालयों में आज हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के मृद्भाण्ड आसानी से देखने को मिल जाते हैं। मृद्भाण्डों ने इतिहास की उलझी हुई कई समस्याओं को सुलझाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उदाहरण के लिए सैन्धव लिपि दाहिने से बाएँ लिखी जाती थी अथवा बाएँ से दाहिने। चूंकि सैन्धव लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं गया इसलिए इस समस्या का समाधान नहीं हो सका था। इस समस्या का निराकरण कालीबंगा के उत्खनन ने किया। यहाँ से प्राप्त उत्कीर्ण मृद्भाण्डों के टुकड़ों से व्यक्त होता है कि सैन्धव लिपि बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी। वास्तव में मृद्भाण्डों की यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। जिस प्रकार वर्णमाला के अभाव में साहित्य का अध्ययन सम्भव नहीं है उसी प्रकार मृद्भाण्डों के अभाव में पुरातत्व का अध्ययन कर पाना सम्भव नहीं है।

ISSN 2348-3857

सन्दर्भ सूची

1. राय, गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन, विद्या भवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला-34, वाराणसी, 1976, पृ.सं. 3
2. पाण्डे, जयनारायण, पुरातत्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 1983, पृ.सं. 136
3. पाण्डे, वी.के., प्राचीन भारतीय कला वास्तु एवं पुरातत्व, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2013, पृ.सं. 379
4. मीणा, गोविंद सिंह, पूर्वी राजस्थान का पुरातात्विक एवं सांस्कृतिक इतिहास, प्रारम्भ से 650 ई. लिट्रेरी सर्किल जयपुर, 2012, पृ.सं. 40, 41
5. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाइर्टड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2017-18, पृ.सं. 206, 207
6. चौबे, सौरभ, प्राचीन भारत, यूनिवर्सल बुक्स, प्रयागराज, 2017, पृ.सं. 80, 81
7. सिंहदेव, पुष्यमित्र, जयपुर का इतिहास एवं पुरातत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2014, पृ.सं. 4
8. सक्सेना, आशुतोष, राजस्थान का ऐतिहासिक पुरातत्व, साहित्यागार प्रकाशन, जयपुर, 1991, पृ.सं. 8,9
9. नीरज, जयसिंह, शर्मा भगवती, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2017, पृ.सं. 12
10. सिंह, उपिन्दर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पाषाण काल से 12वीं शताब्दी तक, पियर्सन प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं. 121
11. साहनी, राय बहादुर दयाराम, आर्कियोलॉजिकल रिमेन्स एण्ड एक्सकेवेशन एट बैराठ, जयपुर 1936, पृ.सं. 17
12. शर्मा, गोपीनाथ, राजस्थान के इतिहास के स्रोत पुरातत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2017, पृ.सं. 14
13. रिड, हन्ना, एक्सकेवेशन एट रंगमहल, द स्वीडिश आर्कियोलॉजिकल एक्सपिडिशन टू इण्डिया, 1952-53, पृ.सं. 12, 13
14. शर्मा, देवदत्त, राजस्थान का माटीशिल्प, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2013, पृ.सं. 20